

कबीर की कविताओं में नैतिकता की अवधारणा

डॉ० निरंजन कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी

राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

मनुष्य का व्यक्तित्व उसके कार्य व्यवहार एवं विचारों से निर्मित होता है। विचारों की शक्ति वस्तुतः उनके उद्गम स्थल पर निर्भर करती है। व्यक्ति का मन जितना निर्मल होता है, उसका व्यक्तित्व उतना ही सशक्त होता है। व्यक्तित्व जितना सशक्त होता है उतनी ही शक्ति उसके द्वारा उत्पन्न विचारों में होती है। ऐसा व्यक्ति जब कोई बात कहता है तब वह स्रोतों के हृदय में सीधे प्रवेश करती है। सहृदयी आनंदित होता है तथा कलुषित तिलमिला जाता है। ऐसे ही विचारों के धनी कबीर थे। जिनका उद्देश्य स्व के साथ पूरी मानवता का कल्याण था। जिस सादगी और नैतिकता का आचरण उन्होंने अपने जीवन में किया वह हमारे लिए अनुकरणीय है। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा जिस नैतिक आचरण एवं चरित्र का उपदेश दिया है उसे हृदयंगम एवं प्रकाशित करना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए। आज पूरी दुनिया मैं-मैं के चक्कर में इतना स्वार्थी हो गया है कि घर, परिवार, रिश्ते-नाते, समाज की कौन बात करें अपने माता-पिता की भावनाओं का भी कद्र नहीं करता। ऐसे में कबीर की यह पंक्ति बरबस याद आ जाती है -

कबीर सोई पीर है, जो जाने पर पीर।

जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। इस काल के प्रमुख कवियों की विशेषता है कि उन्होंने अपने जीवन से लेकर अपनी रचनाओं तक में नैतिक मानवीय मूल्य और संस्कृति की रचना प्रक्रिया को आत्मसात किया है। अपने समय और परिवेश के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन को अभिव्यक्त करने में इन क्षेत्रों की मूल प्रक्रिया को व्यंजित किया है। साथ-ही-साथ अपनी रचना के स्तर पर भी उन्होंने धर्म, दर्शन, साधना के उच्चस्तरीय, मूल्य बोध की निरन्तर अभिव्यक्ति की है। इनमें कबीर की स्थिति विशेष है।

कबीर के साहित्यिक अवदान पर विवाद हो सकता है, किन्तु उसका नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक महत्व असंदिग्ध है। कबीर ने अपनी ओजस्वी और निर्भीक वाणी में जिस प्रकार से समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, पाखण्ड और ऊँच-नीच की भेद भावना का

विरोध किया तथा समता, सत्य एवं अहिंसा का प्रचार किया। उसकी महत्ता आज भी विद्यमान है। उनके द्वारा जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की गई आज की विषम सामयिक परिस्थितियों में वे अधिक प्रासंगिक हो गए हैं।

कबीर की रचना हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। एक तरफ जहाँ उसमें आध्यात्मिकता दृष्टिगोचर होती है, वहीं दूसरी तरफ उसमें भौतिक जीवन का व्यावहारिक पक्ष भी लक्षित होता है। आज की सामयिक परिस्थितियों में जब जीवन अव्यवस्थित और संकटपूर्ण हो गया है तो ऐसे में मानव मूल्यों को हृदयंगम करने की आवश्यकता बढ़ गयी है, हमारा आज का वैचारिक धरातल अत्यन्त स्वार्थपूर्ण हो गया है और हम अपने दृष्टिकोण में इतने संकीर्ण हो गये हैं कि हमने सामाजिक मर्यादा का महत्व ही भुला दिया है जिसके फलस्वरूप 'अर्थ' सर्वोपरि होता जा रहा है। कबीर के समय और आज के समय में सबसे बड़ा अंतर यह है कि उस समय धर्म सम्पूर्ण व्यवस्था के केन्द्र में था और आज के समय में धन। ऐसा नहीं कि उस समय धन की सत्ता समाप्त थी और आज धर्म की सत्ता समाप्त हो गयी है, लेकिन प्रधानता की बात महत्वपूर्ण है। आज 'धन' के आगे धर्म गौण हो गया है। पूरा समाज इससे प्रभावित हो रहा है। आज के समय में कुछ कर सकने का सामर्थ्य रखने वाले लोग आत्मकेन्द्रित होते जा रहे हैं। घर जोड़ने की माया प्रबल होती जा रही हैं – अपने लिए, अपने परिवार के लिए, अपने लोगों के लिए – क्या कुछ करने और क्या कुछ पाने की ललक मनुष्य को भाई-भतीजावाद की ओर ढकेले जा रहा है। अगर कुछ ज्यादा उदार हुए तो अपनी जाति विशेष के लिए। बस, इन्हीं के लिए संवेदनाएं आज ज्यादा प्रबल हो रही हैं। 'जाति' यहाँ कबीर की जाति 'हरिजन' नहीं है, जो पूरे मानव समाज के लिए प्रयुक्त होती है। यहाँ जाति का अर्थ सीमित हो गया है, जिसने वर्ग से रूपान्तरित होकर एक नया रूप अपना लिया है और 'जातिवाद' की अवधारणा को विकसित करने को प्रोत्साहित कर रही है। ऐसा सभी को तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु ऐसे लोगों को ही आज भरमार है, जो अधिक से अधिक धन-संग्रह की प्रवृत्ति से लिप्त हैं। धन-संग्रह की प्रवृत्ति ने मनुष्य को लोभी और अवसरवादी बना दिया है। सम्पूर्ण भ्रष्टाचार और घोटालों के पीछे मात्र यही एक प्रमुख कारण है। उन सब नौकरशाहों और राजनेताओं को अपने जीवन में कम-से-कम एक बार तो अवश्य अनपढ़ कबीर से यह शिक्षा लेने की आवश्यकता है –

साई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय।

मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

उदर समाता अन्न ले, शरीर समाता चीर ।

अधिक ही संग्रह न करे, ताका नाम कबीर ।।

धन के आगमन का अनैतिक मार्ग अमीर और गरीब के बीच पड़ी खाई को चौड़ी कर रही है। एक तरफ समाज का वह वर्ग है जो अत्याधुनिक सुख-सुविधाओं को भोग रहा है और दूसरी तरफ एक ऐसा भी वर्ग है जो लगातार भुखमरी का शिकार होकर काल कवलित हो रहा है। इतना ही नहीं सबसे सहनशील और धैर्यवान भारतीय किसान भी इस खाई की चपेट में आकर अब आत्महत्या कर रहे हैं। एक तरफ धन के अत्याधिक अनैतिक मार्ग से आगमन के कारण मानवीय मूल्य और नैतिकता समाप्त हो रही है तो दूसरी तरफ धन के अभाव में इंसान ।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह खड़ा होता है कि भक्तिकाल के सगुण काव्य धारा में मानवीय नैतिक मूल्य स्पष्ट परिलक्षित होते हैं, लेकिन कबीर की कविताओं में अध्यात्म और दर्शन प्रचुर मात्रा में है। ऐसे में नैतिक मानवीय मूल्यों का क्या स्थान है ? जहाँ तक सगुण काव्यधारा की बात है वह एक 'कथा और लीला' का आधार लेकर लिखी गई रचना है। उसको मानवीय संस्कृति के विभिन्न पक्ष-स्तरों पर रचनाशील होने का अवसर मिला है। इस प्रकार सगुण काव्य में 'मूल्य' प्रक्रिया के सभी आयामों का सहज ही समाहार हुआ है। अगर सगुण काव्यधारा में पारिवारिक जीवन के कर्तव्यों में मूल्य-दृष्टि को देखा जा सकता है तो वहीं दूसरी तरफ कबीर में मूल्य को सीधे और सपाटबयानी के स्तर पर अभिव्यक्ति मिली है साथ ही साथ दर्शन और साधना के स्तर पर भी मिलती है।

यहु सब झूठी बंदिगी, बरिया पंच निवाज ।

साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ।।

सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ ।

जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौ कहाँ खुदाय ।।

पढ़ि-पढ़ि के पत्थर भया, लिखि-लिखि भया जूँ ईट ।

कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एको छीट ।।

इस प्रकार, कबीर अपनी रचनाओं में विभिन्न परिस्थितियों धर्म साधना और अध्यात्म क्षेत्र तक के मूल्यबोध को अनेक स्तरों पर, नाना रूपों तथा विभिन्न आयामों में अभिव्यक्त करते हैं। जहाँ इन्होंने इन समस्त क्षेत्रों की प्रचलित पारम्परिक रूढ़ियों, मान्यताओं, विकृतियों, विडम्बनाओं तथा मूल्यहीनताओं का प्रभावी शैली में खण्डन तथा वर्जन कर मानवी, नैतिक

मूल्यों का मण्डन किया है। वहाँ प्रायः साखी (दोहा) शैली का प्रयोग हुआ है और जब वह इन समस्त मूल्यों को अनुभव के रूप में अभिव्यक्त करते हैं तब सबद (पद) का प्रयोग करते हैं। यह अधिक है। कबीर “कवि के रूप में समग्र मानव-जीवन को अपने अनुभव का क्षेत्र स्वीकार किया है और उसकी अभिव्यक्ति अपनी काव्य में है। उनके काव्य से उपदेश ग्रहण किया जाता है, शिक्षा मिलती है, सत्या-सत्य का बोध होता है, पर उनका मौलिक व्यक्तित्व कवि का है और यह सब अनुभव तथा सहज बोध के स्तर पर ही वह सम्प्रेषित करते हैं।”¹

तेरा मेरा मनुवा कैसे इक होई रे।

तू कहता कहता कागद की लेखी, मैं कहता आखिन की देखी ॥

मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाई रे ॥

कबीर की विचारधारा चाहें धर्म से संबंधित हो, समाज से संबंधित हो, चाहे अन्य किसी भी विषय से सम्बन्धित हो, सबके मूल में यही भावना है कि सभी मानव समान हैं। सबमें ब्रह्मा है। वह सर्वत्र है। इसलिए कबीर की रचना में निहित नैतिक मूल्य अपने समकालीन रचनाओं की तुलना में ज्यादा मौलिक है। ऐसी दृष्टि देश काल से बाधित नहीं होती। जिसकी उपयोगिता मात्र सामयिक नहीं है। शाश्वत की नींव पर बना महल शाश्वत ही होगा।

अतः कबीर ने जो आधार चुना है उसकी सर्वकालिकता, सार्वभौमिकता स्वतः सिद्ध होने के छः सौ वर्ष से ज्यादा समय बीत जाने के बाद भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। वह केवल सैद्धान्तिक नहीं है। व्यावहारिक है, भोगा हुआ है, परखा हुआ है। अतः आज भी व्यावहारिक जीवन के लिए परम कल्याणकारी एवं उपयोगी है।

ऐसी वानी बोलिए मन का आपा खोय।

औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ॥

सीलवंत सबसे बड़ा सब रतनन की खानि।

तीन लोक की सम्पदा रही सील में आनि ॥

कबीर साहित्य का अध्ययन करने वाले व्यक्ति प्रायः उनको समन्वयवादी सुधारक मानते हैं। लेकिन यह कबीर की प्रतिभा का सही मूल्यांकन नहीं है, क्योंकि कबीर जैसा क्रान्तिकारी व्यक्ति समझौते का मार्ग नहीं अपना सकता। उनकी स्पष्ट घोषणा है –

पंडित मुल्ला जो कछु लिख दिया।

छाड़ि चला हम कुछु ना लिया ॥

वे अपने मार्ग पर विभिन्न धर्मों के आचार-विचार, मत-संस्कारों का समन्वय स्वीकार करके नहीं चलते वे समस्त धर्माचारों और वाह्यडम्बरों के जंजालों एवं संस्कारों को विध्वंस कर शुद्ध मानवीय नैतिक मूल्य को सामने लाते हैं।

ऐसे में कबीर की समन्वय दृष्टि समस्त मतों में निहित व्यापक एवं महती मानव मूल्य के स्वीकार पर प्रतिष्ठित है न कि सभी तरह के अनुकरण पर। कबीर के अन्तरमन में मनुष्य की परिकल्पना व्यापक मूल्यों के आधार पर है और इस अखण्ड विश्वास के सहारे साहस के साथ उन्होंने सभी तरह के धार्मिक विधि-विधान को अस्वीकार कर मनुष्य को सहज मानवीय मूल्यों पर प्रतिष्ठित किया है। यह वह 'मूल्य' की भूमिका है जिसकी प्रतिष्ठा के लिए कवि को रूढ़िवादी विश्वासों एवं शास्त्रों आदि के भ्रमजालों को छिन्न-भिन्न करना पड़ा। मूल्यों के सांस्कृतिक समन्वय की स्थिति में ही मानव समाज के बीच से अशान्ति, हिंसा, भ्रष्टता और आपाधापी दूर हो सकती है, किन्तु सभी तरह से सभी प्रकार के समन्वय का होना तब भी असंभव था और आज भी। यह पुनित कार्य तभी संभव हो सकता है जब कवि समूचे संस्कृति में पैठ रखने का हौसला रखता हो। यह हौसला कबीर में दिखाई पड़ता है। वे डरे नहीं, पैठने का साहब दिखलाये।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'कबीर' में कबीर के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि – "कबीर ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"²

कबीर 'सबकी खैर' माँगने वाले साधक थे। उनका यह विश्वास था कि सभी मनुष्य एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं। सबके धमनियों में प्रवाहित खून का रंग एक ही है। तब यह भेद कैसा ? जाति और धर्म के आधार पर किये भेद को वे नहीं मानते थे किन्तु कर्माधारित भेद उन्हें भी मान्य था। स्वर्ण कलश अगर मदीरा से भरा हो तो वह निन्दनीय है। 'करणी ऊँचा होय' तो मानव श्रेष्ठ है। कबीर श्रम को महत्व देते हैं, वैराग्य को नहीं। समाज में रहकर अपना कर्म करते हुए ईश्वर प्राप्ति की साधना की जा सकती है। समाज से कटकर नहीं। ईश्वर प्राप्ति के लिए जंगल में जाने, घर त्यागने, जोगी का वेश धारण करने इत्यादि

नाना प्रकार के साधना की आवश्यकता नहीं है। किसी कृत्रिम वेशभूषा की जरूरत नहीं सिर्फ मन को शुद्ध और निर्मल करने की जरूरत है –

कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।

पीछे-पीछे हरि फिरै कहत कबीर-कबीर।।

कबीर सभी मनुष्यों के बीच मैत्री स्थापित करना चाहते हैं। नैतिकता और सदाचारण को हमेशा कबीर महत्व देते हैं। वे जिस लोक की कल्पना करते हैं, वहाँ सभी मनुष्य समान है। सभी वहाँ मिल-जुलकर शांति और सद्भाव से रहते हैं। कबीर की आकांक्षा को रेखांकित करते हुए डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा है – “उन्हें कोई भी मत स्वीकार्य नहीं जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न करता है। उन्हें कोई भी अनुष्ठाता या साधक मंजूर नहीं है, जो बुद्धि विरुद्ध है। उन्हें कोई भी शास्त्र मान्य नहीं है, जो आत्मज्ञान को कुण्ठित करता है। वेद कितेब भ्रमोत्पादक है, अतः अस्वीकार्य है। तीर्थ व्रत, पूजा, नमाज, रोजा, गुमराह करते हैं, इसलिए अग्राह्य हैं। पंडित पांडे, काजी, मुल्ला उन धर्मों के ठेकेदार हैं जो धर्म नहीं है। अतः घृणास्पद है।”³ कबीर मनुष्य को सिर्फ मनुष्य के रूप में देखना चाहते थे। मनुष्यत्व ही कबीर की कविता का मूल है। मैनेजर पाण्डेय ने कबीर का मूल्यांकन करते हुए भी इस बात पर बल दिया है – “कबीरदास अगर केवल आलोचना और प्रश्न करने तक सीमित रहते तो वे अधिक से अधिक असहमति और विरोध के कवि होते, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं। लेकिन वे केवल असहमति और विरोध से आगे बढ़कर समाज में मनुष्यत्व की भावना को विकसित करने और मनुष्य सत्य को प्रतिष्ठित करने के लक्ष्य को सामने रखती है।”⁴ आलोचना और प्रश्न करने की प्रवृत्ति तो उस बड़े लक्ष्य की राह को सरल बनाने में सहायक मात्र है। कबीर मनुष्यत्व की भावना के विकास के लिए मनुष्य के हृदय और उनसे विकसित मानवीय गुणों को लोक धर्म का आधार बनाते हैं। समाज में मानवीय भावों और मानवोचित गुणों के प्रसार के लिए मनुष्य विरोधी भावों को हटाना आवश्यक होता है, इसीलिए कबीर ईर्ष्या, क्रूरता, कामुकता, कपट, अहंकार, पाखण्ड आदि की आलोचना करते हैं और प्रेम, करुणा, दया, उदारता, अहिंसा, समता आदि मानवीय भावों और गुणों को लोकधर्म बनाने पर जोर देते हैं। वे यह भी चाहते हैं कि इन मानवीय भावों, विचारों और गुणों के अनुरूप मनुष्य स्वयं आचरण करें।

कबीर ने मानवीय धर्म के आधार पर अपनी प्रेम साधना के मार्ग पर चलने के लिए विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में प्रचलित ऐसे कर्मकाण्डों तथा आचारों का विरोध किया जो जड़वत हो गये हैं। सामाजिक अपराधों को करने वाला व्यक्ति ईश्वरप्राप्ति का अधिकारी नहीं हो सकता—

अरे इन दोहुन राह न पाई
हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पाइन तर सोवै यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहि में करैं सगाई।
बाहर से इस मुर्दा लाये, धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेठन बैठी, घर घर बड़े बड़ाई।।

कबीरदास ने जीवन को साधना के मार्ग पर अग्रसर करने के लिए एक ओर व्यक्ति को दुर्गुणों से मुक्त होने के लिए आगाह किया है, तो दूसरी ओर मूल्यों की भूमिका पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है। व्यक्ति काम, क्रोध, मद आदि पर आचरण करता हुआ जीवन में उच्च भूमिका की ओर अग्रसर नहीं हो सकता, भले ही गंगास्नान, पूजा—पाठ तथा तीर्थाटन आदि का निर्वाह करता फिरे।

कबीर के अनुसार धर्म का सच्चा आधार ग्रहण कर व्यक्ति साधारण जीवन में सार्थक होता है, जो मूल्य पर आधारित होता है पोथियो पर नहीं। वह मन में मिलता है, मन्दिर और मस्जिदों में जाने से नहीं। सिर्फ मन को साफ रखने की जरूरत है — एक ही दोहे में इतने बड़े मूल्य की स्थापना कबीर कैसे कर देते हैं, यह प्रशंसनीय है —

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाहे हीरदे साच है, ताके हिरदै आप।।

कबीर जिसे संबोधित करते हैं वह एक साधु समाज है जो मानवीय मूल्यों का अनुसरण करता है और दूसरा वह समाज है जो मूल्यों को अपने स्वार्थ के चलते ताक पर रख देता है। वे सभी हिन्दु—मुसलमान नहीं हैं। वे धर्म सत्ता पर बैठे और पाखण्ड करने वालों को ललकारते हैं, आलोचना करते हैं तथा दूसरे वर्ग के लोगों को उनसे सचेत रहने के लिए कहते हैं। वे सांसारिक झगड़ों से दूर चार दिन के जीवन को प्रेम और सौहार्द के साथ बिताने

का आग्रह करते हैं। वे मनुष्य के एकत्व पर जोर देते हैं। लेकिन यह संसार उन्मादी है, बौरा गया है। जाति-धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर लड़ने को हमेशा तत्पर रहता है –

साधे देखो जग बौराना।

साँची कहौ तो मारन धावै झूठे जग पतियाना।

हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।

आपस में दोऊ लड़े मरत है मरम कोई नहि जाना।।

समता का आग्रह कबीर के यहाँ बार-बार है। धार्मिक आडम्बरों के लिए बार-बार फटकार है। छूत-अछूत, ऊँच-नीच, जाति की दृष्टि से निंदा की है, उसके आधार पर कोई बड़ा छोटा नहीं है।

मानवीय मूल्य अगर पंडित में भी नहीं है तो वह मूर्ख अधम मनुष्य के समान है अगर निम्न जाति के लोगों में भी उदात्त मानवीय मूल्य है तो वह पंडितों के समान सम्मान पाने का अधिकारी है –

काम, क्रोध, मद लोभ की, जब लागि घट में खानि।

कहाँ मूरख कहा पंडित, दोनों एक समान।

प्रत्येक धर्म का मूल तंत्र मानवता है। मनुष्य को ध्यान में रखकर ही सभी धर्मों की प्रतिष्ठा की गई है। इस बात को कबीर भलीभांति जानते थे और इसका अनुशरण भी किया है। उनकी आलोचनात्मक वाणी में छिपी पीड़ा, संवेदना और मूल्य को वही जान सकता है जिसने पाखण्ड, आडम्बर और कट्टरता के विरुद्ध, मनुष्यत्व की खोज की है। कबीर की रचना में विद्रोही मूल्य उसी व्यक्ति को आकर्षित करेंगे, जिसने उनके निहितार्थों तक पहुँचने की आस्था व्यक्त की हो। जिसे मनुष्यता की रक्षा में साम्प्रदायिकता के विरुद्ध मानवीय मूल्यों में विश्वास है। उन्हें कबीर की कविता बार-बार प्रेरणामद लगती है। कबीर सारी आलोचना और व्यंग्य के बावजूद धर्म के मूल तंत्र को पहचानने की बात कहते हैं। जिसका रास्ता मनुष्य से होकर गुजरता है और वह इंसान हिन्दू-मुसलमान कि के रूप में नहीं है। वह जाति, धर्म, सम्प्रदाय से हटकर केवल और केवल मनुष्य मात्र है। कबीर अपनी रचना में इसी मूल्य की पैरवी करते हैं।

कबीर की आलोचना परम्परा और दृष्टि डालने से पता चलता है कि कबीर पर बहुत लिखा गया है। कुछ नायाब भी लिखा गया है, जैसे आचार्य-शुक्ल की धारणा को देखे वे एक तरफ तो इन्हें ज्ञानमार्गी कहते हैं और दूसरी तरफ बेपढ़ा लिखा मानते हैं। उनकी

वाणी में अज्ञानजनति उद्दण्डता को भी पहचानते हैं। फिर ऐसे में कबीर को ज्ञानमार्गी कहने की उन्हें क्या आवश्यकता थी। कबीर को कुछ और कह सकते थे। उनके लिए कोई और कोटि बना सकते थे। कबीर को लेकर शुक्ल जी की क्या मजबूरी थी ? वह कौन सी मंशा थी जिसके चलते कबीर की कोटि बनाते समय उन्हें ज्ञानमार्गी और व्याख्या करते समय अपढ़, गवांर, सुनी-सुनाई बातों को कहने वाला इत्यादि कहते हैं। 'मसि कागद छुयो नहीं' की पंक्ति को लेकर हम कबीर को बेपढ़ा लिखा तो मान लेते पर हैं पर जब वे यह कहते हैं कि सम्पूर्ण समुद्र को स्याही बनाकर पूरे जंगल के पेड़-पौधों को कलम बनाकर और पूरी धरती को कागज बनाकर लेखनी करूँ,' तो इसका क्या आशय है? बहरहाल, इस प्रकार के कई नायाब मत और प्रश्न हैं उसकी चर्चा यहाँ करना अनावश्यक होगी। फिर भी इतना कहना आवश्यक है कि कबीर की रचना का समग्र आधार सदैव और सतत मनुष्यत्व की भावना का विकास करना है। उन्होंने हमेशा इसके लिए संघर्ष किया और बार-बार गुहार लगाया है। आज कबीर के नाम पर बहुत कुछ दिखावा हो रहा है। दिखावा का मूल मंतव्य छलावा है। सच बात तो यह है कि कबीर के साथ न कोई तब चलने को तैयार था न अब। क्योंकि उनकी शर्त विकट है, अपना घर जलाना होगा। निजी स्वार्थ से ऊपर उठना होगा। डॉ० शिवकुमार मिश्र इस तरफ संकेत करते हुए लिखते हैं – "कबीर जीवन भर गुहार लगा लगाकर थक गए कि कोई माई का लाल तो उनके साथ चले, किन्तु शर्त इतनी कठोर थी कि किसी को हौंसला नहीं हुआ कि उसे पूरा करते हुए वह उनके साथ आए और आगे बढ़े। कबीर वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय से परे सच्ची इंसानियत के मुरीद थे।"⁵ इस उद्धरण में थक गये वाली बात से मैं सहमत नहीं हूँ। क्योंकि इसका उल्लेख कबीर की रचनाओं में नहीं मिलता। कबीर कभी उम्मीद नहीं किये थे कि उनको सभी लोग माने, वे सत्य के प्रहरी थे। वे सब को सत्य का साक्षात्कार कराना चाहते थे न कि खुद को पीछे चलने वाली फौज खड़ा करना चाहते थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी एवं नैतिकतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंध विश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धांतों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं, मूलोच्छेदन करने का बेड़ा उठाया और निर्मतापूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन सामन्तों तथा शासकों को लक्ष्य कर ऐसी अनेक बातें कहीं हैं जिनसे भौतिक ऐश्वर्य पर आधारित उनके झूठे अभिमान का मूलोच्छेदन हो। सामाजिक शोषण, अनाचार और अन्याय

के विरुद्ध संघर्ष ने आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्र है। कबीर से हम रूढ़िगत सामंती दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डटकर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं कि विद्रोही कवि किस प्रकार अन्त तक शोषण के दुर्ग के सामने अपना माथा ऊँचा रखता है।⁶ कबीर अपने पूरे जीवन में –साँच ही कहत और साँच ही गहत' हैं। उनकी रचना सभी प्रकार के नैतिक मानव मूल्य विरोधी मूल्यों को ध्वस्त कर, जाति सम्प्रदाय के संकुचित दायरे से बाहर आने का आग्रह करती है। वह अपने साथ सबका खैर मांगती है।

कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर।

ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।

संदर्भ सूची :

1. रघुवंश, कबीर एक नई दृष्टि, तृतीय संस्करण 2002, इण्डियन प्रेस प्रा0लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ0 8
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, ग्यारहवीं आवृत्ति, 2004, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 144
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, सं0 2009, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 84
4. पाण्डेय, मैनेजर, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, चतुर्थ संस्करण, 2003, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 33
5. मिश्र, शिवकुमार, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, संस्करण 1999, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 47
6. तिवारी, पारसनाथ, कबीर वाणी, 25वां संस्करण, 2008, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 61
